ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-8* September- 2021
Innovation The Research Concept

उपनिषदों में बिम्ब-विधान

Imagery in the Upanishads

Paper Submission: 14/09/2021, Date of Acceptance:23/09/2021,Date of Publication:24/09//2021

सीमा यादव
असिस्टेण्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
पब्लिक महिला सहर डिग्री कॉलेज, बरामदपुर, मऊ
उत्तर प्रदेश, भारत

आर.एन. यादव
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
संत गणिनाथ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश / Abstract

मानव अज्ञान के कारण अपने लक्ष्य से भटक गया हैं। वह जीव, जगत तथा जगत्कर्त्ता के रहस्योद्घाटन में लगा हैं। प्राचीन मनीषी ऋषियों द्वारा उक्त विषय पर सघन चिन्तन एवं मनन किया गया जो वेद, आरण्यक एवं उपनिषद के रूप में निबद्ध हैं। उपनिषद वेदों के अन्तिम भाग हैं जिससे सृष्टि एवं सृष्टि के कारण विषयक जिज्ञासा की शान्ति की गयी हैं।

Man has deviated from his goal due to ignorance. He is engaged in the revelation of the living entity, the world and the creator. Intensive contemplation and contemplation was done by the ancient sages on the above subject, which are written in the form of Vedas, Aranyakas and Upanishads. The Upanishads are the last part of the Vedas, from which the curiosity about the creation and the cause of creation has been pacified.

मुख्य शब्द- उपनिषद,बिम्ब-विधान,उपनिषदों में बिम्ब-विधान।
Upanishads, Image-Vidhan, Image-Vidhan in Upanishads.

प्रस्तावना-

उपनिषदों में स्पष्ट उल्लेख है कि जगत के समस्त प्राणी एक ही अविनाशी ब्रह्म के अंश है उनमें केवल शरीर भेद हैं, ज्ञान स्वरूप उनकी आत्मा एक हैं। अज्ञान के कारण ही शरीरों की अलग सत्ता (मान्यता) हैं। उपनिषदों में निहित ज्ञान से जब मानव को बोध हो जाता है कि "अंहब्रह्मास्मि" अर्थात् ब्रह्म एवं जीव में कोई भेद नहीं है तब वह सम्पूर्ण जड़-चेतनात्मक सृष्टि में अपने स्वरूप को देखता हैं। उसे मानव ही नहीं पशु-पक्षिओं, जीव-जन्तुओं, वृक्षों, नदियों तथा पहाड़ों से प्रेम हो जाता हैं। फलतः उसमें उनकी सहायता एवं संरक्षण की भावना उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी भावना से जगत में व्याप्त बहुसंख्य बुराईयों का अवसान तथा जगत का कल्याण होगा। प्रस्तुत शोध में मुख्य उपनिषदों को आधार माना गया हैं एवं उन्हीं के वाक्यों को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया गया हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

सृष्टि एक पहेली है जिसे सुलझाने के प्रयास में मनीषी अनादिकाल से दृढ़ संकल्प हैं। बुद्धिजीवी जीवन, मृत्यु, आत्मा की शाश्वतता शरीर की नश्वरता, जगत, जगत का कर्त्ता तथा जगत के प्रयोजन विषयक जिज्ञासा की शान्ति में मननशील हैं। दुःख की निवृत्ति तथा आनन्द की खोज सबका लक्ष्य हैं। अन्वेषण के मार्ग में कुछ आध्यात्मिक जगत में है तो कुछ भौतिक। फलस्वरूप साहित्य शास्त्र तथा विज्ञान की अलग-अलग धारायें प्रस्फुटित हो गयी। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य साहित्य एवं दर्शन की विधाओं में निहित बिम्बविधान की परिकल्पना का बोध तथा जगत मे व्याप्त, बुराइयों जैसे- आतंकवाद, अलगाववाद, स्वार्थवाद हिंसा तथा द्वेष के निराकरणपूर्वक समाज में समरसता तथा प्रेम की भावना उत्पन्न करना हैं।

अध्ययन का मुख्य पाठ

बिम्ब काव्य का अभिन्न अंग हैं। इसके बिना काव्य अस्तित्वहीन हैं। बिम्ब का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है जैसे- प्रतिछाया, प्रतिकृति, मूर्ति, चित्र एवं प्रतिबिम्ब आदि किसी वस्तु की सादृश्यता या प्रतिबिम्ब को 'बिम्ब' कहते हैं। परिवर्तन संसार का नियम हैं। इसी परिवर्तन के कारण ही बिम्ब विधान का उदय हुआ। अंग्रेजी साहित्य में बिम्ब-विधान का उदय 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे फ्रांसीसी प्रतीकवादी आन्दोलन से प्रभावित होकर हुआ। इसके जन्मदाता होने का श्रेय "सर एजरा पाउण्ड" को हैं। जबकि हिन्दी साहित्य में बिम्ब-विधान के अन्वेषक पंडित रामचन्द्र शुक्ल को माना जाता हैं। भारतीय धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में बिम्ब की सत्ता बहुत पहले से विद्यमान हैं। वस्तुतः कोई भी कवि काव्य का प्रणयन करने के पूर्व अपने मानसपटल पर भावचित्र का निर्माण करता है तदुपरान्त शब्दों में पिरोकर मूर्त रूप प्रदान करता हैं। विद्वानों ने बिम्बविधान को अनेक प्रकार से परिभाषित किया है, जैसे- 'वस्तु, भाव या विचार को कल्पना या मानसिक क्रिया के माध्यम से इन्द्रियगम्य बनाने वाला व्यापार ही बिम्ब-विधान है'[1]

बिम्ब-विधान अभिव्यक्ति की एक प्रणाली है, जिसमें अनुभूतियों का चित्रण मानसकि चित्रों से किया जाता हैं।[2] इस प्रकार मानसिक विचारों, कल्पनाओं अथवा अनुभूतियों को इस प्रकार शब्दबद्ध करना कि श्रोताओं एवं पाठकों के हृदय में आकार ग्रहण करके प्रति-बिम्बित होने लगे। वे उस भावनात्मक आकार (चित्र) में इस प्रकार रसमग्र हो जायं कि उस समय अन्य विषयों से विरत उनकी वाह्येन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर उसी भाव चित्र में विलीन हो जायं। उन्हें ऐसी अनुभूति हो कि सब कुछ प्रत्यक्ष, यथार्थ एवं वास्तविक हैं। इसी बिम्ब विधान पर सम्पूर्ण काव्य जगत आधारित हैं। बिम्ब ही काव्य में रस एवं दर्शन में पुरुषार्थ का कारण हैं। प्रस्तुत शोध पत्र उपनिषद विषयक है जिसमें स्पष्ट किया गया है कि हमारी चित-वृत्ति ही अखण्डाकाराकारित स्वरूप में अज्ञानावरण को दूर करके जगत रूप में प्रतिबिम्बित ब्रह्म का साक्षात्कार करा देती हैं। प्रसंगतः उपनिषदों पर आधारित वेदान्त दर्शन का संक्षिप्त स्वरूप विचारणीय है जैसा कि विद्वत विदित हैं- "वेदान्तो नाम उपनिषद प्रमाणम्"।

उपनिषद वेदों के अन्तिम भाग हैं। वैदिक साहित्य का विभाजन चार भागों में किया गया है-

संहिता

मन्त्रों के संकलित रूप को संहिता कहते हैं। इनकी संख्या चार है-

ऋग्वेद

यह सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद संहिता का अर्थ हैं- छन्दोबद्ध ज्ञान का संग्रह। इसके अधिकांश मन्त्र स्तुति परक हैं। ऋग्वेद के कुछ सूक्त ऐसे हैं जिनके विचारों पर दर्शन की नींव पड़ी एवं उपनिषदकारों ने दर्शन रूपी इमारत को मूर्त रूप दिया । दसवें मण्डल के 90वें सूक्त में एक विराट पुरुष की कल्पना की गयी है जिससे सम्पूर्ण जड़ चेतनात्मक जगत् उत्पन्न हुआ। उपनिषदों में यही पुरुष ही ब्रह्म का स्वरूप हैं। प्रमाणार्थ कुछ मंत्र नीचे उद्धृत हैं-

सहस्रशीर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात्[3]
पुरुष एवेदं सर्वं यत् भूतं यच्च भाव्यम्[4]
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः[5]
त्रिपात् उर्ध्वः उत् ऐत् पुरुषः[6]
ततो विराडजायत विराजोऽधिपूरुषः[7]
चन्द्रमा मानसो जातश्चक्षोः सूयोऽजायत[8]

इसी प्रकार नासदीय सूक्त में 'अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्'[9] अर्थात् सृष्टि के पहले गाम्भीर गहन जल था। हि सूक्त में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' की बार-बार आवृत्ति से सृष्टिकर्त्ता की ओर संकेत किया गया हैं।

ऋग्वेद के दशवें मण्डल में 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते'[10] मन्त्र में जीवात्मा तथा परमात्मा की ओर संकेत किया गया हैं।

यजुर्वेद

इसकी शैली गद्यात्मक है। 'गद्यात्मको यजुः', वैदिक- कर्म काण्डों का प्रतिपादन इसी वेद में किया गया हैं। इसकी कृष्णा यजुर्वेद एवं शुक्ल यजुर्वेद नामक दो प्रसिद्ध शाखायें हैं। शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय ईशोपनिषद नाम से जाना जाता हैं जिसमें ब्रह्म प्राप्ति विषयक विचार हैं। उपनिषदों में यह सबसे प्राचीन माना जाता हैं।

सामवेद

संहिताओं में ऋग्वेद के बाद सामवेद का ही महत्व हैं। गीता में कृष्ण ने कहा है कि 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' यह गेय शैली में हैं। इसकी अधिकांश ऋचायें ऋग्वेद से उद्धृत हैं। कौथुमीय राणायनीय तथा जैमिनीय इसकी उपलब्ध तीन शाखायें हैं। छन्दोग्योपनिषद तथा केनोषनिषद इसी वेद से सम्बन्धित हैं। दोनों उपनिषदों में इन्द्रिय, जीवात्मा, परमात्मा तथा सृष्टि रहस्य विषयक विचार हैं।

अथर्ववेद

इसका एक प्राचीन नाम 'अथर्वाङ्गिरस' भी हैं। अथर्वों के मन्त्र व्याधियों के नाशक तथा अङ्गिराओं के मन्त्र शत्रुओं, हिंसक पशुओं से रक्षा तथा मायावी शक्तियों को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। जादू, टोना, झाड़-फूँक की नींव इसी वेद में पड़ी हैं। भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा का स्रोत भी यही हैं। मुण्डकोपनिषद तथा माण्ड्कयोपनिषद इसी वेद से सम्बन्धित हैं।

ब्राह्मण

इसमें यज्ञ से सम्बन्धित मन्त्रों की विधि परक व्याख्या की गयी हैं। ब्रह्म विषयक विचार होने के कारण इसे ब्राह्मण कहते हैं। ब्राहमण ग्रन्थों में निन्दा-प्रशंसा, विनियोग, निर्वचन मत-मतान्तर, प्रतीकात्मकता तथा आख्यान की विवेचना हुई हैं। ऐतरेय, शतपथ, कौषतकी, तैत्तरीय ताण्ड्य, षड्विंश, जैमिनीय तथा गोमय मुख्य ब्राह्मण हैं जो चारों वेदों से सम्बन्धित हैं।

आरण्यक

'आप्टे' महोदय ने कहा है कि आरण्यक ब्राह्मणों से सम्बद्ध धार्मिक एवं दार्शनिक लेखों के संग्रह हैं। अरण्य में रह कर ऋषियों द्वारा किया गया ज्ञान परक चिन्तन ही आरण्यक हैं। ये ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट तथा उपनिषदों के बीज हैं। यदि ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय यज्ञीय अनुष्ठान है तो आरण्यकों का मुख्य विषय यज्ञों के मूल में निहित आध्यात्मिक विचार। ऐतरेय, शाङख्यायन, तैत्तरीय, मैत्रायणी, माध्यन्दिन, वृहदारण्यक काण्व वृहदारण्यक, जैमिनीयोपनिषद आरण्यक तथा छान्दोग्य नामक मुख्य एवं चारों वेदों से सम्बन्धित उपलब्ध आरण्यक हैं।

उपनिषद

'उप+नि+सद्' अर्थात् पास में नीचे बैठकर गुरु से रहस्यात्मक ज्ञान प्राप्त करना। उपनिषद का मुख्य अर्थ विद्या तथा गौण अर्थ हैं- ब्रह्म विद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ। अर्थात् जिस विद्या में ब्रह्म प्राप्ति विषयक चिन्तन उपनिषद कहते हैं। यहाँ ब्रह्म का आशय, सृष्टिकर्त्ता से हैं। वस्तुतः सृष्टि, जीवात्मा, परमात्मा, जीवन, मृत्यु, प्रयोजन तथा जीवों को प्राप्त होने वाले दुःख की निवृत्ति तथा उसकी उपाय का जिसमें युक्ति संगत विचार उपनिषद हैं। पहले भी बताया जा चुका हैं कि उपनिषदों को वेदान्त कहते हैं। चारों वेदों के अन्तिम भाग में चर्चा हैं। कुल 108 उपनिषदों का नामोल्लेख है किन्तु प्राप्त अधोलिखित उपनिषद् ही मुख्य है- ईशावांस्यो कथोपनिषद, केनोपनिषद, प्रश्नोपनिषद, मुण्डकोपनिषद, माण्डूक्योपनिषद, तैत्तरीयोपनिषद, ऐतरेयो छान्दोग्योपनिषद, वृहदारण्यकोपनिषद, कोषीतकीउपनिषद, श्वेताश्वरोउपनिषद, मैत्रायणीउपनिषद।

सांसारिक दुःखो की निवृत्ति एवं सृष्टि विषयक जिज्ञासा सभी दर्शनों का विचारणीय तत्व हैं। वेदान्त दर्शन माया रूपी दर्पण में प्रतिभासित ब्रह्म को जगत का कारण मानता हैं। माया अनादि एवं अनिर्वचनीय है जो ज्ञान होने पर समाप्त हो जाती हैं। सूफियों ने भी संसार को ईश्वर का स्वच्छन्द दर्पण बताया हैं जिसमें सर्वत्र विविध रूपों में ईश्वर का बिम्ब दिखाई पड़ता हैं।[11] **ब्लैक** प्रत्येक विश्वसनीय वस्तु को सत्य का बिम्ब मानते हैं।[12] **(Everything "possible to be believed is an image of truth")** "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"[13] अर्थात् सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप में ब्रह्म की ही एक मात्रा सत्ता है सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का विवर्त हैं। जैसे अल्प-प्रकाश में पड़ी हुई रज्जु (रस्सी) साँप के रूप में प्रतीत होती हैं किन्तु पूर्ण प्रकाश में यथार्थ ज्ञान होने पर पता चलता हैं कि साँप नहीं रस्सी हैं, उसी प्रकार माया के कारण अज्ञानवश ब्रह्म में जगत की प्रतीति होती हैं। ज्ञान की स्थिति में जगत अस्तित्वहीन हो जाता हैं। केवल नित्य शुद्ध, बुद्ध एवं ज्ञान स्वरूप ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता हैं। "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या"।

यहाँ प्रश्न स्वाभाविक है कि शुद्ध, निर्विकार एवं ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सुख-दुःखात्मक जगत का कारण क्यां बन जाता हैं?

वस्तुतः 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'[14] एकमेवद्वितीयं ब्रह्म।[15] अर्थात् आत्मा (ब्रह्म) अनादि एवं एक है, वही सबसे पहले से विद्यमान हैं। उसकी अपने स्वरूप को विभिन्न रूपों देखने की इच्छा हुई। कुछ श्रुतियां प्रमाण स्वरूप उद्धृत है- 'एकोहं बहुस्यामः, 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' आदि। फलतः उसने अपनी माया शक्ति से स्वरूप का आंशिक गोपन करके जड़-चेतनात्मक जगत को प्रतिभासित कर दिया! 'यतः सत्

पुरुषात् केशलोमानि'।[16] अर्थात् जिस प्रकार जीवित पुरुष से केश एवं रोम उत्पन्न हो जाते है उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से विश्व उत्पन्न हो जाता हैं। "तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकात् विस्फुलिङाः"।[17] जिस प्रकार प्रज्जवलित अग्नि से उसी के समान रूप वाली हजारों चिनगारियां नाना प्रकार से प्रकट होती है उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से अनेक प्रकार के भाव मूर्त एवं अमूर्त रूप में प्रकट होते हैं। उपनिषदों में इस प्रकार के अनेक उद्धरण हैं। गीता में भी विश्व को ब्रह्म का विराट् रूप स्वीकार किया गया हैं।[8]

सृष्टि में माया शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण हैं। माया के विषय में मतान्तर होने के कारण ही वेदान्त को अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत रूपों में विभाजित किया गया हैं। माया को सत् एवं असत् से परे अनादि माना गया हैं। वस्तुतः सृष्टि विषयक रहस्य से अन्तर्निहित उपनिषदों का ज्ञान सर्वसामान्य को वोधगम्य नहीं था। इस ज्ञान को जन मानस तक पहुँचाने के लिए मनीषी आज भी प्रयासरत हैं। प्राचीन मनीषियों में काशकृत्सन, काष्र्णाजिन, वादरि, जैमिनि, आश्मरथ्य, ओडलोमि, आत्रेय आदि प्रमुख हैं। उपनिषदों का गहन अध्ययन करके महर्षि कृष्णद्वैयापन व्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना की। कृष्णद्वैयापन व्यास पराशरमुनि एवं सत्यवती के पुत्र थे। सत्यवती के कुमारी रहते उन से व्यास जी की उत्पत्ति होने कारण उन्हें (कानीन) कन्यापुत्र भी कहते हैं। आचार्य गौडपाद तथा योगीन्द्र गोविन्द क्रमशः इनके परमपुत्र (दादागुरु) एवं गुरु थे। उपनिषदों के ज्ञान से सारगर्भित महर्षि व्यास कृत 'ब्रह्मसूत्र' सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं तर्क संगत सिद्ध हुआ। इसकी महत्ता के कारण ही, उपनिषद, भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी की संज्ञा प्राप्त हैं। प्रस्थानत्रयी को ही आधार मानकर आचार्यशंकर, भास्कर, यादव प्रकाश, रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य तथा आचार्य वलदेव आदि ने अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार भाष्य लिखा। इसके बाद विज्ञान भिक्षु ने विज्ञान भाष्य, अप्ययदीक्षित ने न्याय रक्षामणि, तथा रामानन्द ब्रह्मामृतवर्षिणी नाम से महत्वपूर्ण व्याख्यायें लिखी। जगत् गुरु शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर उपनिषदों के ज्ञान को आमजन के मानस तक बोधगम्य कर दिया। एक लक्ष्य होने के बावजूद भी मनीषियों की विचारधारा चार धाराओं में प्रवाहित है जिस का सूक्ष्म प्रकाश प्रसंगतः आवश्यक हैं।

1. आचार्य शंकर के अनुसार 'जीवोब्रहमैवनापरः' जीव एवं ब्रह्म का कोई भेद नहीं हैं। जीव अज्ञान (माया) के कारण अपने को पृथक् मानता हैं ज्ञान होने पर ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त कर लेता हैं।
2. रामानुजाचार्य के मत में माया निर्मित अचेतन तत्व तथा ब्रह्म का अंश जीव बह्म से विशिष्ट हैं। जीव एवं अचेतन तत्त्व बह्म के विशेषण हैं। अतः इस मत को विशिष्टाद्वैत कहा जाता हैं।
3. मध्वाचार्य के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त जीव और जगत की अलग सत्ता हैं। अतः इस सम्प्रदाय को द्वैतवादी कहते हैं।
4. निम्बार्काचार्य- जीव एवं ब्रह्म किसी दृष्टि से एक है और किसी दृष्टि से अलग-अलग हैं। अतः इस सम्प्रदाय को द्वैताद्वैत वादी कहते हैं।

अद्वैतवादी आचार्य शंकर ने सत् ब्रह्म और असत् संसार के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए माया शक्ति की कल्पना की है तथा उपनिषद के वाक्यों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है- 'अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः'[19]। साङ्ख्य दर्शन में इसी माया को प्रकृति की संज्ञा दी गयी है जो सत्त, रज तथा तम तीन गुणों से युक्त हैं। प्रकृति ही सृष्टि की जननी तथा पुरुषों को अपने ज्ञान में फँसाती हैं। इस दर्शन में प्रकृति तथा पुरुष दोनों के अस्तित्व की मान्यता हैं किन्तु वेदान्त में माया को न तो सत् माना गया हैं न असत्। माया यदि सत् होती तो ज्ञान होने पर नष्ट नहीं होती। अज्ञान में पड़ी हुई रस्सी को उस समय तक साँप समझा जाता है जब तक प्रकाश से उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार प्रकाश से रस्सी में साँप अस्तित्वहीन हो जाती है उसी प्रकार अज्ञान की निवृत्ति होने पर माया एवं उससे जनित सृष्टि अस्तित्वहीन हो जाती हैं तथा सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय हो जाता हैं- 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत'[20]। माया असत् भी नहीं है क्योंकि यही सम्पूर्ण जगत की अवभासक हैं। अर्थात् माया के कारण ही जगत् की सत्ता हैं। हम कह सकते है कि जगत माया का कार्य हैं और असत् कारण से कभी सत् कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। कार्य को अपने उपादन कारण की अपेक्षा रहती हैं। इसी गुत्थी को सुलझाने के लिए योगीन्द्र सदानन्द ने वेदान्त सार में अज्ञानोपहित ब्रह्म (ईश्वर) की उपमा लूता (मकड़ी) से दी हैं। जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से निकाले गये तन्तुओं से जाले का निमार्ण करती हैं। अर्थात् वह तन्तुओं के प्रति उपादानकारण तथा चैतन्य की प्रधानता से निमित्तकारण बनती हैं। उसी प्रकार ईश्वर भी अज्ञान की प्रधानता (माया शक्ति) से चराचर जगत् का उपादानकारण तथा चैतन्य की प्रधानता से निमित्तकारण बनता हैं। अतः माया सत् तथा असत् से परे अनिर्वचनीय हैं। माया के स्वरूप को पहचान केवल ज्ञानियों को हैं। गीता में उद्धृत हैं-

'दैवीह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया,[21]
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायमितां तरन्ति ते'।

अर्थात् अलौकिक त्रिगुणमयी माया अत्यन्त दुस्तर हैं।

मेरे विचार से माया ब्रह्म की एक शक्ति है जिससे वह अपने स्वरूप का गोपन करके जगत की सृष्टि करता हैं। शैव दर्शन में इसी को शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति की संज्ञा दी गयी है जिससे शिव सृष्टि के रूप में प्रकट होता हैं। निम्न श्रुतियों प्रमाण स्वरूप उद्धृत हैं- 'इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते'।[22]

'माया तु प्रकृतिं विद्यान् मायिनंतु महेश्वरम्'।[23]
अव्यक्त नारी परमेश शक्तिः, अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।

ब्रह्म, माया एवं जगत् के बाद ईश्वर एवं जीव पर सूक्ष्म प्रकाश प्रासंगिक हैं। उपनिषदों में माया की सत्व उपाधि से युक्त ब्रह्म को ही सगुणब्रह्म अथवा ईश्वर की संज्ञा प्राप्त हैं। अर्थात् निर्गुण, निर्विकार, शुद्ध ज्ञान स्वरूप ब्रह्म जब अपनी माया शक्ति से अपने आंशिक स्वरूप का गोपन करता हैं तो उसी को सगुणब्रह्म या ईश्वर कहते हैं। यथार्थतः यही जगत् का कर्त्ता एवं नियन्ता हैं। यही माया निर्मित जगत को प्रतिभासित करता हैं। माया अथवा अविद्या की मलिन सत्व उपाधि से युक्त इन्द्रिय, मन, अहंकार तथा शरीर की उपाधियों से अलग किया गया ब्रह्म ही 'जीव हैं-तदात्मानं स्वयमकुरुत्।[24]

ईश्वर एवं जीव के चैतन्यांश में कोई भेद नहीं हैं। ईश्वर सर्वज्ञ हैं, जीव अल्पज्ञ। ब्रह्म ही अपनी माया शक्ति की समष्टि से ईश्वर तथा व्यष्टि से जीव रूप में प्रतिभासित होता हैं- "एकोदेवः सर्व भूतेषु गूढः सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा"।[25] स्वाभाविक हैं कि उपनिषदों में ब्रह्म, ईश्वर एवं जीव में कोई भेद नहीं हैं। अज्ञान के वशीभूत जीव अपने को ब्रह्म से पृथक समझते हैं। ज्ञान की स्थिति में ब्रह्म का साक्षात्कार करके ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं, यह जीव एवं ब्रह्म का ऐक्य रूपी साक्षात्कार बिम्ब-विधान पर आश्रित हैं।

जीव-ब्रह्मैक्य में उपनिषदों के मुख्यतः तीन महावाक्यां का सहारा लिया गया हैं- 'तत्वमसि'[26] अयमात्मा ब्रह्म[27] एवं अहंब्रह्मास्मि![28]

'तत्वमसि' महावाक्य में -तत् का आशय ईश्वर (सगुणब्रह्म) तथा त्वम् का आशय जीव से हैं। तत् एवं त्वम् दोनों ही परब्रह्म अखण्डचैतन्य के लक्षण हैं। ब्रह्म लक्ष्य हैं। वेदान्त विद्या का अधिकारी साधक जब जीवन-मृत्यु रूपी संसाराग्नि से संतप्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्त गुरु के पास जाता हैं एवं ब्रह्म प्राप्त की जिज्ञासा करता हैं तो गुरु श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के स्वरूप का परिचय कराते हुए 'तत्वमसि' के रहस्य का उद्घाटन कर देता हैं कि तत् (ईश्वर) एवं त्वम् (जीव) एक ही ब्रह्म हैं। वह अज्ञान के कारण पृथक-पृथक प्रतिभासित हो रहा हैं। ऐसी स्थिति में साधक के चित्त में अखण्डाकाराकारित चित्त-वृत्ति उत्पन्न होती हैं कि 'अहंब्रह्मास्मि'। मैं ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध स्वरूप अनन्त एवं अद्वय ब्रह्म हूँ। यह चित्तवृत्ति प्रत्यकभिन्न सोपाधिक ब्रह्म को अपना विषय बनाती हैं जिससे अज्ञान एवं अज्ञान से उत्पन्न समस्त प्रपञ्च उसी प्रकार नष्ट हो जाता हैं जिस प्रकार तन्तुओ के जल जाने पर पट (वस्त्र)। अज्ञान के नष्ट हो जाने पर माया में प्रतिबिम्बित ब्रह्म अद्वय रूप में ठीक उसी प्रकार प्रकाशित होने लगता हैं जैसे दर्पण के नष्ट हो जाने पर दर्पण में प्रतिम्बित मुख केवल बिम्ब मात्र दिखाई पड़ता हैं। अज्ञान रहित ब्रह्म के प्रकाश में जीव का प्रकाश, सूर्य के प्रकाश में दीपक के प्रकाश की भाँति विलीन हो जाता हैं जिससे जीव एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं रह जाता। इस प्रकार स्पष्ट हैं कि उपनिषदों में मुक्ति का आधार बिम्ब-विधान पर आश्रित हैं जिसमें संसिक्त अमृतरस का पान करके मनीषी जागतिक जड़-चेतनात्मक सृष्टि में अपने रुप का साक्षात्कार करके पुरुषार्थ के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करता हैं।

निष्कर्ष

उपनिषदों में निहित ज्ञान से जब मानव को बोध हो जायेगा कि जीव एवं ब्रहम में कोई भेद नहीं हैं जिस प्रकार समुद्र एवं उसकी लहर में केवल नाम भेद हैं उसी प्रकार ब्रहम एवं जीव मे भी नाम भेद हैं-'जीवोव्रहमैव नाऽपरः'। जगत के सम्पूर्ण प्राणी एक ही अविनाशी ब्रह्म के अंश हैं। माया के वशीभूत होकर प्राणी एक दूसरे को अलग समझते हैं तथा अपने एवं पराये की दुर्भावना से ग्रसित होकर दुराचरण करते हैं। वेदान्त में निहित बिम्ब विधान के परिज्ञान से उनमें 'अहंव्रहमास्मि तथा तत्त्वमसि' की भावना उत्पन्न होगी जिससे मानव एक दूसरे में अपने स्वरूप का दर्शन करेंगे। उनमें स्नेह, सहयोग, परोपकार तथा एकता का बीज अंकुरित होगा जिससे हमारी संस्कृति का उद्देश्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना चरितार्थ होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ भागीरथ मिश्र-काव्यशास्त-पृष्ठ-282*
2. *"New Mode of The Study of Literature" P-27*
3. *ऋग्वेद- 10/190/1*
4. *ऋग्वेद- 10/190/2*
5. *ऋग्वेद- 10/190/3*
6. *ऋग्वेद- 10/190/4*
7. *ऋग्वेद- 10/190/5*
8. *ऋग्वेद- 10/190/13*
9. *ऋग्वेद- 10/121*
10. *ऋग्वेद- 10/164/10*
11. *F-Hedland Devis- The Parsian Mystics – Jallaludin Rumi P. 63*
12. *W. Black – Quoted by c.d. Lewis in "Poetic Image" P.27*
13. *तैत्तरीयोपनिषद-2/1*
14. *ऐतरेयोपनिषद-1/1/1)*
15. *छान्दोग्योपनिषद -6/2/2*
16. *मुण्डकोपनिषद-1/1/7*
17. *मुण्डकोपनिषद-2/1/1*
18. *गीता-15/16-17*
19. *श्वेताश्वरोपनिषद-4/5*
20. *ईशावास्योपनिषद- पहला मंत्र*
21. *गीता- 7/14*
22. *ऋग्वेद-6/47/18*
23. *श्वेताश्वरोपनिषद-4/10*
24. *तैत्तरीयोपनिषद-2/7/1*
25. *श्वेताश्वरोपनिषद-6/11*
26. *छान्दोग्योपनिषद-6/8/7*
27. *माण्डूक्योपनिषद*
28. *वृहदारण्यक्योपनिषद*